मूल्य छ रुपये (6 00)
दूसरा सस्करण 1970, © नानकसिंह
शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस, शाहदरा, दिल्ली, मे मुद्रित
PUJARI (Novel) by Nanak Singh

जादूगरनी



रचयिता

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

सोल एजेन्ट्स्
सस्ता-साहित्य-मण्डल,
अजमेर।

प्रकाशक
भारती-प्रकाशन-मन्दिर,
अजमेर।

प्रथमवार
२१००

मूल्य
बारह आना

जुलाई
१९२९

मुद्रक
जीतमल लूणिया,
सस्ता-साहित्य-प्रेस, अजमेर।

प्रकाशक का वक्तव्य

बहुत दिनो से इच्छा थी कि हिन्दी में एक ऐसी प्रकाशन-संस्था का सूत्रपात किया जाय, जो सद्ग्रन्थो के प्रकाशन के साथ-साथ श्रमजीवी लेखको के हित का अधिक-से-अधिक ख़याल रक्खे एवं उनकी अधिक-से-अधिक सेवा करके उन्हे जीवन-संघर्ष में कुछ सहायता पहुँचा सके और जिसका संचालन भी पूँजीपति प्रकाशको के हाथ में न होकर श्रमजीवी लेखको ही के हाथ में हो। तात्पर्य यह कि पाठको की सेवा और लेखको की सहायता ही जिसका ध्येय हो और जो पाठको और लेखकों के बीच मे, उनके दुख-दर्द से अनभिज्ञ कोरे अर्थलोलुप पूँजीपति प्रकाशको की दीवार न खड़ी होने दे।

तदनुसार 'कलाधर-किरण-मण्डल' नामक संस्था का ग्वालियर में प्रारम्भ किया गया और उसका ध्येय उस समय, साधनो की संकुचितता के कारण, केवल ललित साहित्य का प्रकाशन ही रक्खा गया। 'आँखो में'—नामक एक पुस्तक भी उससे प्रकाशित की गई। किन्तु, बाद में, परिस्थिति के कुछ अनुकूल और साधनो के कुछ सुलभ हो जाने पर उसका कार्य्य-क्षेत्र बढ़ा देने की इच्छा हुई। कुछ मित्रो को नाम में भी संकीर्णता का आभास मिला। अतः, अब उसे 'भारती-प्रकाशन-मन्दिर, अजमेर' के विकसित रूप में नये सिरे से प्रारम्भ किया जा रहा है और उसका लक्ष्य केवल ललित साहित्य निकालना ही नहीं, वरन् सब प्रकार की सुरुचि-पूर्ण, उपयोगी और उत्कृष्ट पुस्तकें प्रकाशित करना निश्चित

किया गया है। हिन्दी की सुप्रसिद्ध निस्स्वार्थ संस्था 'सस्ता साहित्य-मण्डल' ने अपने स्वाभाविक स्नेह और औदार्य के साथ हमारी पुस्तकों की सोल एजेन्सी लेकर हमारे कार्य को बहुत सुगम बना दिया है।

हमें आशा है, अब हमें इसके द्वारा विविध रुचि के सहृदय पाठकों के साथ-साथ विभिन्न विषयों के विद्वान् एवं प्रतिभाशाली लेखकों की सेवा करने का यथेष्ट अवसर मिलेगा और हम सुरुचि, तत्परता तथा ईमानदारी के साथ उसके लिए सदा यत्नशील रहेंगे।

'आँखो में' के बाद प्रेमीजी की यह दूसरी और सम्भवतः सर्वश्रेष्ठ पुस्तक प्रकाशित करने का हमें अवसर मिल रहा है। हिन्दी में यह अपने ढंग की बिलकुल नई चीज़ है। आशा है, पाठक इसे अपनाकर हमें प्रोत्साहित करेंगे, जिससे हम अन्य लेखकों की भी विविध विषयों की उत्तमोत्तम पुस्तकें शीघ्र ही उनकी सेवा में उपस्थित कर सकें।

इसके बाद ही हम श्रद्धेय हरिभाऊजी उपाध्याय का 'साहित्य और समाज'—नामक ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। हमें विश्वास है, वह हमारे पाठको को और भी प्रिय होगा।

सहृदय पाठकों को यह तो बताना ही न होगा कि 'भारती-प्रकाशन-मन्दिर' उनकी सेवा का लक्ष्य सामने रखकर ही साहित्यक्षेत्र में आ रहा है और वह केवल उन श्रमजीवी लेखकों की संस्था है, जो एक निश्चित सदुद्देश्य लेकर जीवन-पथ में बढ़ना चाहते हैं।

—प्रकाशक

प्राक्कथन

कबीर ने कहा है,—

'माया महा-ठगिनी हम जानी।
तिरगुन फाँस लिये कर डोलै बोलै मधुरी वाणी।
केसव के कमला ह्वै बैठी सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत ह्वै बैठी तीरथ में भई पानी।
योगी के योगिन ह्वै बैठी राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी काहू के कौड़ी कानी।
भक्तन के भक्तिन ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्माणी।
कहै कबीर सुनो हो सन्तो यह सब अकथ कहानी।'

इसी ठगिनी 'माया' को मैंने 'जादूगरनी' कहा है। इसी जादूगरनी के विविध रूपों को शब्दों-द्वारा अंकित किया है। जिसने अपने 'जादू' से सकल ब्रह्माण्ड को मोह लिया है, उसकी शक्ति का—उसके सौन्दर्य का वर्णन करना वास्तव में बुद्धि के परे है। मैंने लिखा है—'एक मनोरञ्जन था विधिका, जिसने दिया तुझे आकार। अपने जाले में मकड़ी-सा, पर, फँस गया स्वयं कर्तार।' इस महामाया के महाजाल का वर्णन ब्रह्मा भी नहीं कर सकते। कबीर के शब्दों में वह 'अकथ कहानी' है।

यही महामाया प्रत्येक भवन में नारी बनकर अपनी अभिराम छवि से आलोक करती रहती है। संसृति के प्रथम प्रहर से जगत् इसी रूप की वन्दना कर रहा है। अनेक गीतो-छन्दों, काव्यों-उपन्यासों, नाटकों में, इसी छवि का अभिवादन किया गया है! 'घर-घर में तेरी ही प्रतिछवि करती है आलोक अनूप। अगणित अणुओं में बँट जाता एक महत्तम नारी रूप!'

मैंने इस पुस्तक में शक्ति के लौकिक और अलौकिक सभी प्रकार के रूपों का वर्णन करने का प्रयत्न किया है! इस सर्व-व्यापक शक्ति के सौन्दर्य का सम्पूर्ण अनुभव करना, और उस अनुभूति को व्यक्त करना बहुत सरल नहीं है, इसलिए मुझे अपने प्रयास में पूर्ण सफलता मिली है, यह मैं नहीं कहता, परन्तु, मुझे आशा है, इस विषय के जितने काव्य अभी तक देखने में आये हैं, उनमें यह पुस्तक एक नई चीज़ अवश्य समझी जायगी। 'माया' का इस व्यापक रूप में विस्तृत वर्णन हिन्दी के किसी कवि ने किया है, यह मुझे ज्ञात नहीं। व्रजभाषा के कुछ कवियों ने अवश्य ही नारी-रूप के वर्णन में अपनी क़लम और दिमाग़ का सारा ज़ोर लगा दिया है, लेकिन उन्होंने रस में इतना विष घोल दिया है कि उस विषय का साहित्य ही विकृत हो

गया है। जिन इने-गिने प्राचीन कवियो ने इस विषय में सुरुचि की रक्षा की है, उन्होंने एक ही प्रवाह में इतने विस्तार से नहीं लिखा। इसलिए मुझे यह कहने में संकोच नही होता कि इस विषय की इतनी विशद यह पहली ही पुस्तक है और इसमें मैंने सुरुचि की रक्षा का पूर्ण प्रयत्न किया है।

मेरा विचार था कि भूमिका में मैं भी अपनी धारणाओ के अनुकूल वर्तमान कविता-धारा का विस्तृत विवेचन करूँ, परन्तु यह पुस्तक ऐसे समय मे प्रकाशित हो रही है, जब मुझे कुछ लिखने का तो क्या, मरने का भी अवकाश नही है। और फिर, साहित्य-संसार मे भूमिका-की अपेक्षा अपने काव्य के गुण-दोषों द्वारा ही प्रतिष्ठा प्राप्त करना मै अधिक श्रेयस्कर समझता आया हूँ, चाहे आज-कल प्रतिष्ठा उन्हीं को क्यो न प्राप्त होती हो, जो स्वयं या अपने-मित्रों-द्वारा निरन्तर अपना विज्ञापन किया करते है। वैसी प्रतिष्ठा प्राप्त करने की मुझ मे शक्ति भी नही और इच्छा भी नही, यदि कोई इच्छा है तो केवल यह कि जब मै सरस्वती के मन्दिर मे आ ही बैठा हूँ तो लोग मेरे भी गीतो का मर्म समझें। मैं इनकी अकिचनता से अपरि-चित नहीं हूँ, पर यह कहे विना नही रह सकता कि इन्हें

लिखते समय मैंने 'दर्दे दिल' का कम अनुभव नहीं किया है।

मुझे अपनी इस पुस्तक से बड़ा सन्तोष हुआ है, इसलिए मैं आशा करता हूँ कि साहित्य-मर्मज्ञों को भी यह प्रसन्न करेगी ! जो कला के मर्म को नहीं समझते, वे इसकी निन्दा करें या प्रशंसा, मेरे निकट उसका कुछ भी मूल्य नहीं, परन्तु कला के पारखियो की सम्मति का वास्तव में मैं आदर करता हूँ, फिर चाहे वह मेरे पक्ष में हो या विपक्ष में। मैं प्रसन्न अन्तःकरण से पारखियो की परख की प्रतीक्षा करूँगा।

यदि पाठको ने इस पुस्तक को पसन्द किया, तो यथा-समय अपनी अन्य ५—६ पुस्तकें भी क्रमशः प्रकाशित कराने का यत्न करूँगा, जो प्रायः तैयार हैं।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

स्वर्गता 'प्रेमलता' की स्मृति में।

प्यारी प्रेमलता,

जिस समय तू अपने छोटे-से जीवन की अन्तिम साँसें ले रही थी, उस समय मेरे एक पहलू में तू सिसक रही थी और एक पहलू में यह 'जादूगरनी' पड़ी थी!

तेरी जिस मुसकान ने मेरे हृदय में माधुर्य्य और जादू भर दिया था, वह देखते-देखते अनन्त शून्य में विलीन हो गई! तेरी आँखों के जिन भोले इशारों से मेरे जीवन की गति बदल गई थी, वे सहसा निस्पन्द हो गए! हाय, तेरे उन अधरों को, तेरी उन आँखों को मैं अपने ही हाथों से चिता पर जला आया! वह चिता आज भी मेरे हृदय में 'धक-धक' जल रही है!

तुझे पहली बार देखकर 'जादूगरनी' लिखने की इच्छा हुई थी! वह पूरी भी न हो पाई, कि तू पहले ही चल दी! दिल टूट गया! क़लम रुक गई! तब से टूटे-हुए दिल की तरह यह अधूरी ही पड़ी रही!

तेरी स्मृति मेरे हृदय और आँखों में सदा नृत्य करती रहती है, मेरी 'जादूगरनी' भी संसार के हृदय और आँखों में नर्तन करे, यही आशीर्वाद दे!

तुझे मैंने अपनी समझा था, पर, तू उस अनन्त की एक किरण थी। उसीने तुझे अपने में समेट लिया!

यह 'जादूगरनी' भी मेरी नहीं है, यह भी उसी अनन्त की है! उस अनन्त तक अभी मेरी पहुँच नहीं हुई है, पर तेरी स्मृति पर

मेरा अनन्य अधिकार है और उसकी पहुँच अनन्त तक है। अतः उसे ही यह 'जादूगरनी' समर्पित है। तू अपने अदृश्य हाथों से इसे अनन्त की भेंट करदे। वह अपने अनन्त हाथों से इसे संसार को सौंप दे।

संसार तुझे मेरी 'पुत्री' समझता था और मैं ठीक नहीं कर पाया था कि क्या समझूँ। तू छोटी थी—दुधमुँही थी, पर तुझे गोद में खिलाते समय मैं अनन्त की गोद में खेलने लगता था! अब इस 'जादूगरनी' को हृदय से लगा लेता हूँ, तो समझता हूँ, यही मेरी प्रेमलता है। मेरी प्रेमलता! मैं तुझे जितना प्यार करता था, उतना क्या कोई और कर सकता था, इसी तरह मेरी 'जादू-गरनी' को क्या कोई मेरी तरह प्यार कर सकेगा!

—'प्रेमी'



जादूगरनी

री जादूगरनी छविमान !
किया विधाता ने तुझको रच
अपना ही स्वरूप-विस्तार।
अपना चमत्कार, मायाविनि,
दिया तुझे उसने उपहार।

अपनी इच्छा से तू जैसा,
देवि, बनाती है संसार—
अपनी ही कृति कहकर उससे
होता है कृतार्थ कर्तार।
[२]

अपना ही प्रतिरूप बनाकर
भेजा है तुझको, सुकुमार !
अथवा तेरा रूप बनाकर
लिया यहाँ उसने अवतार।

तू, चिर-सुन्दरि, विश्व-विपिन में
खिलती है, देती मधु-दान—
जो मधु-दान जगत् की ज्वाला को
करता है शान्ति प्रदान।

सुन्दरता की सरिता, तेरे
सरस स्नेह में कर जग स्नान,
पाप, ताप, अभिशाप शान्त कर
हो जाता मङ्गल, अम्लान।

जब तेरी छवि जग-पलकों पर
करती है मादक शृङ्गार,
स्नेह-स्वप्न-सा सुन्दर, सुखकर
बन जाता है तब संसार।

जो तुझको पूजा करते हैं
भेंट चढ़ाते तुझ पर प्राण,
जिनको जादू-भरी हँसी से
करती है निहाल अनजान,

जग के पाप-विकारों से वे
हो जाते हैं, पावनि, पार।
सत्य और सुन्दर है, शिव है,
है असीम तेरा अधिकार।

तेरे जादू से जगमग हैं
भुवन चतुर्दश, तीनों लोक।
करती है अपनी आभा से
लोक-लोक में तू आलोक।

रवि के चारों ओर घूमते
जैसे ग्रह-उपग्रह अविराम,
तुझे घेरकर घूम रहे हैं
जग के प्यासे नयन सकाम।

जादूगरनी

जो करता है तेरी छवि में
अपना जीवन तन्मय लीन
वही अमर हो जाता सुन्दर,
हो जाता है सीमाहीन।

नन्दन-वन के रस-मानस के
स्वर्ण-शतदलों पर अविरत
चञ्चल परी, अरी, तू कितने
कल्पों से है नृत्य-निरत!

कभी-कभी पंखों पर बैठा
जाती जग को उस पार,
जहाँ प्रेम, मादकता, मधुऋतु,
सत्य, अमरता का विस्तार।

तेरे मूक इशारे पर, सखि,
मन्त्र-मुग्ध होकर संसार
चरणों पर चुपचाप चढ़ाता
चरम साधनाओं का सार,
री जादूगरनी छविमान!

जब तू पागल करती प्राण,
　　जब तू अपना रूप दिखाती
　　नयनो का सारा अभिमान
　　तेरे चरणो पर झुक जाता,
　　विस्मित होते हैं नादान।

तेरे आकर्षण की मादक
मृदुल अँगुलियाँ अति सुकुमार
बरबस मुट्ठी में कर लेतीं
जग के कितने हृदय उदार!

ठुकरावे, इतरावे, चाहे
हँसकर गले लगावे तू,
जग तुझ पर ही मतवाला है
मारे या कि जिलावे तू।

जग हृदयों का हार गूँथकर
देता है तुझको उपहार।
तू निहाल कर देती उसको
कर उससे अपना शृङ्गार।

इन्द्रधनुष-सी रंग-बिरंगी
जादू की लकड़ी तेरी
केवल कौतूहल में तूने
जिसके भी ऊपर फेरी,

जीवन भर वह पागलपन के
सपने देखा करता है,
अन्तर्-तर की तस्वीरों में
रंग अनोखे भरता है।

अमर वेदना से वह अपना
सूना हृदय सजाता है।
अपनी टूटी हुई बाँसुरी से
तेरे गुण गाता है।

बेहोशी के—मादकता के
मधुवन में वह मधुप-समान
तेरी सुधि में बेसुध हो
गाता तेरी ही छवि का गान।

बहता है निर्झर-सा अविरल
कितनी बाधाएँ कर पार,
तुझमें ही अस्तित्व डुबाता,
अरी प्यार की पारावार!

तेरी एक झलक में दुनिया
दीवानी हो जाती है।
कितने रंग-विरंगे तेरी
माया जाल विछाती है,
जब तू पागल करती प्राण।

जब तू करती है आह्वान
तेरी ओर हृदय विहगी-सा
तब सहसा उड़ जाता है—
रवि-शशि-अम्बर के भी ऊपर
अपना मार्ग बनाता है।

सूने में तेरा आकर्षण
दूना हो जाता बलवान।
तेरी सतरंगी सीमा को
छूने को अकुलाते प्राण।

जादूगरनी

जब तूफ़ान उठाती है तू,
जब मानस लहराता है,
अतल-सिन्धु में, बिना नाव, उर
लहरों पर बह जाता है।

कण-कण 'चलो-चलो' कह उठता,
क्षण-क्षण लगता कल्प-समान,
त्रिभुवन की विराट वीणा में
जब बजता तेरा 'आह्वान'।

दिनमणि की अगणित किरणों-सा
तेरा आकर्षण, छू प्राण,
अन्तर् में झंकृत कर देता
अभिलाषा की आकुल तान।

सारी ज़ंजीरें पैरों में
लिपटी ही रह जाती हैं,
पागल बनकर तुझे खोजने की
घड़ियाँ जब आती हैं।

"अनायास ही दशों दिशाओं के
खुल पड़ते हैं सब द्वार।
'मलय' सुरभि-सा भर ले जाती
हृदय क्षितिज के भी उस पार।

उपदेशों के जाल बिछाकर
जग तकता रह जाता है,
पर यह मानस ऊपर उड़कर
तुझमें ही मिल जाता है।

सात-सिन्धु के पार बैठकर
भी तू, सुमुखि, बुलाती है।
कभी-कभी आकाश-कुसुम बन
प्राणों को तड़पाती है।

किन्तु, निराशा के भी ऊपर
मानस सेतु बनाता है।
बार-बार ऊपर उड़ता है,
बार-बार गिर जाता है।

एक बार जो पलकें खुलतीं,
फिर वे कभी न गिरतीं हैं,
जिधर-जिधर तू जाती है, वे
उधर-उधर ही फिरतीं है।

एक इशारे में जीवन के
सब बन्धन खुल जाते हैं।
केवल तेरे ही बन्धन में
प्राण समुद बँध जाते है।

अरी अमरता के उपवन की
सुन्दरतम कोमल जलजात !
अलि-सा विश्व बंद हो जाता
छवि-पंखुड़ियों में अज्ञात।

इस बन्धन से मोक्ष बदलने की
जिस दिन आज्ञा होगी,
तेरे द्वार भिखारी होंगे
शत-शत युग-युग के योगी।

जादूगरनी

संसृति के आदिम प्रभात से
अब तक कितने पागल प्राण
तेरे इंगित के बंदी बन
जीवन-मुक्त हुए अनजान ।

पल में खुल पड़तीं दृग-कलियाँ,
कण-कण हो जाता गतिवान,
जब तेरे आह्वान-गान की
छिड़ती है अम्बर में तान ।

तेरे आकर्षण के शर से
बिँध जाते समाधि के प्राण,
तू ही तू फिरती पलकों में
'शंभु' लगाते हैं जब ध्यान ।

तेरी ओर दौड़ पड़ने में
अनायास मिलता 'निर्वाण' ।
तेरे चरणो पर झुक जाते
जप,तप,साधन,व्रत,कल्याण,
जब तू करती है आह्वान

जब तू छिपकर गाती गान,
अहे सप्त स्वर की निर्भरिणी,
तेरी दूरागत झंकार
जग के पलकों पर लहराती
स्वप्नो का झिलमिल संसार।

सुख-दुख की क्षण-भंगुर दुनिया
जिसमें लय हो जाती है,
केवल 'तन्मयता' जीवन का
चरम विभव बन जाती है।

जादूगरनी

कितना विस्मय, कितना आग्रह,
कितनी जिज्ञासा अनजान
तेरे प्रति जग उठती उर में
तनिक टूटती है जब तान!

कुछ कहने-सुनने के पहले
फिर तू भरती है आलाप।
जग के प्राणों पर हो जाता
फिर वह जादू अपनेआप।

तेरी वीणा रची गई है
सकल कलाओं के ले तार,
जिससे कुशल अँगुलियाँ तेरी
जग में वहा रहीं रस-धार।

ले जागृति का राग उषा से,
निशि से ले मोहनी महान,
मादकता शशि की, शिशु की
ले पावनता, जल का कल-गान,

निर्झर का स्वर, सरिता की लय,
सागर का लेकर तूफ़ान,
अपने महागान मे भरकर,
गा देती है जब, छविमान !

अतल रसाम्बुधि में भावुक जग
एक तान मे होता लीन ।
छवि का कूल ताकते रहते
ज्ञान और विज्ञान प्रवीण ।

बैठ क्षितिज के पार, प्यार की,
सुमुखि, उठाती मधुर हिलोर,
बँध जाते अनुराग-ग्रन्थि मे
जिससे नभ-भूतल के छोर ।

जग के प्रथम प्रहर से तेरी
तानें सुनते आते हैं
कितने गुणी विश्व में हैं
जो उनका अर्थ लगाते है
जब तू छिपकर गाती गान !

जब तू देती दर्शन-दान
एक-एक आकुल चकोर को
शत-शत शशि मिल जाते हैं।
शतदल अपनी पंखुड़ियों में
अगणित भानु खिलाते हैं।

जो जिसका चिरवाञ्छित है, वह
मिलता उसको शत-शत बार
पलभर जग पर रीझ खोलती है
जब तू अपना भण्डार।

गोपन का आवरण गगन से
तत्क्षण झट हट जाता है।
घूँघट घन-पट-सा घट जाता,
छवि का रवि मुसकाता है।

रञ्जित रूप-राशि पर यौवन
बलिहारी हो जाता है।
सब जग सूर्य्यमुखी से लोचन
तेरी ओर घुमाता है।

सुन्दरता के अमर लोक की
इन्द्रधनुष-वसने वाले!
तेरी पहली-ही झाँकी में
छक जाते लोचन-प्याले।

जीवन, मरण, अतृप्ति, तृप्ति, औ'
सुख, दुख, तृष्णा, प्यास, पुकार
एक घड़ी को छिप जाते हैं
जब दर्शन देती सुकुमार।

पल-पल पर होती रहती है
तू सुन्दर से सुन्दर-तर,
छवि की अकथ कथा लिख पाएँ
कब कवि के ओछे अक्षर !

ज्योत्स्ना की उज्ज्वलता लेकर,
शशि की ले मादक मुसकान,
चकाचौंध चपला की भरकर
आँखों में अनंग के बाण,

गगन-पुष्प-सा खिल जाता है
जब तेरा सौन्दर्य्य महान,
उसकी एक झलक जगती के
अलि से ले उड़ती है प्राण।

एक निमिष को भी यदि, सुन्दरि,
राह भूल कर आती है,
अनृत, असुन्दर, अशिव जगत् को
अजर अमर कर जाती है
जब तू देती दर्शन-दान।

जब तू छिटकाती मुसकान,
विश्व-रूप-सर के सुमनो के
अरुण लोक की, अयि रानी,
तेरे एक अधर-कम्पन में
बनती दुनिया दीवानी।

स्वर्ण-परी, सौन्दर्य्य-लोक से
छिटकाती ऊषा-सा हास,
त्रिभुवन अनुरञ्जित हो उठता,
फूल-फूल उठता मधुमास।

झंकृत हो उठते प्राणों में
मोद, मधुरिमा, प्रेम, प्रकाश,
मद, मधु, सुरभि, सुधा, शीतलता,
तृप्ति, शान्ति, उल्लास, विकास।

जग के अश्रु, तारिकाओं-से,
मुरझाकर छिप जाते है।
अगणित उर, पुष्पों-से, पल में
पुलकित हो मुसकाते है।

नन्दन-वन का सौरभ भरकर,
संध्या का लेकर तप-त्याग,
अलसित निशि का मद, समेटकर
अम्बर का अपार अनुराग,

एक बार भी जग-आँगन में
मुसका देती यदि, छविमान,
दशों दिशाएँ खिल उठती हैं,
मुखरित हो उठते हैं प्राण।

एक पुलक मे, वन–कुसुमो के
'खुले' इशारे पा, अनजान
विस्मय के जग में खिल पड़ते
वन–विहगो के कोमल प्राण ।

तेरी ओर 'ऋचा' के ऋषि भी
पलभर पलक उठाते हैं।
दर्शन के गम्भीर राग में
कोमल स्वर लग जाते हैं ।

तिरस्कार या प्यार हृदय का
कुछ भी मूल्य चुकाती है,
एक हँसी में प्राण जगत् के,
ठगनी, ठग ले जाती है ।

पुण्य, प्रेम, वरदान, अमृत, सुख
आशा, अभिलाषा, कल्याण,
मुक्ति, योग, साधन-सा पावन
दिखता तेरा रूप महान
जब तू छिटकाती मुसकान !

जब तू करती है पहचान,
अमर लोक से उतर मर्त्य-जग में
कोमल पग धरती है,
ममतामयि, अपनी असीमता,
'सीमा' में लय करती है।

उर के सारे गीत उमड़कर
आँखो मे आ जाते हैं,
आँखो ही आँखों में, पलभर,
परिचय बदल लजाते हैं।

तुझे निकटतम कह, मानव-उर,
गूढ़ स्नेह का तुझ पर सार,
अपरिचिते, पहली चितवन में,
करता निस्संकोच निसार।

एक-दूसरे से छिपकर सब
उर में लिखते तेरा नाम।
तेरी छवि अभिराम जगत् के
जगमग कर देती हृद्धाम।

तेरा परिचय कनक-किरण-सा
छू लेता जब उर के तार,
कितने मादक गीत प्रीति के
झंकृत हो उठते अविकार!

स्नेह, सान्त्वना, शान्ति, मुक्ति-सी
तू हर लेती है दुख-भार,
अयि उदार, जब अपनाती है
अपने कोमल पाणि पसार।

प्रथम पदार्पण से लेकर तू
जीवनभर धर कितने रूप
कण-कण से परिचय करती है,
उर-उर से अनुराग अनूप !

तेरे अञ्चल की छाया में
व्यथित विश्व करता विश्राम,
जब तेरे वत्सल स्वभाव का
परिचय पाता है अभिराम।

पतित-पाविनी, तेरा परिचय
पल में, माँ के स्नेह-समान,
बहा नयन-जल में सब कल्मष,
निर्मल कर देता है प्राण।

घर-घर में तेरी ही प्रतिछवि
करती है आलोक अनूप,
अगणित अणुओं में बँट जाता
एक महत्तम नारी रूप
जब तू करती है पहचान

जब तू बनती है नादान,
सीमा में अबोध अन्तर् के
बँध जाता सौन्दर्य्य अपार।
बन जाती तेरी निश्छल छवि
कितने हृदयों की शृङ्गार!

पहली ही भोली चितवन में,
योगी के उर-सी अविकार,
इस अनजान जगत् का, सरले,
सहज डुबा लेती सब प्यार।

क्रमशः अर्थहीन आँखों में
'कौतूहल' मुसकाता है,
धीरे-धीरे 'विस्मय' उर की
लहरों में लहराता है।

वारि-वीचि-सी, प्रेम-पुलक-सी,
नीरवता की सी मुसकान,
निशि के सरल चन्द्र-सी शीतल
ऊषा-सी सुन्दर, अम्लान,

झरने के अविरल स्वर-सी,
तू अपने में ही हो तल्लीन,
तारा-से दृग जगमग जग में
खोल, खेलती इच्छाहीन।

अनचाहे, अनजान, अचानक
शीतल करती जग के प्राण।
निरभिमान, सौन्दर्य्य-शिरोमणि,
बनती प्राणों का अभिमान।

मृग-शावक-सी जग-आँगन मे
चञ्चल दौड़ लगाती है।
विहगी-सी मृदु फुदक-फुदककर
डाल-डाल पर गाती है।

अँगुली पकड़ किसी की जब तू
चलती है जग-आँगन मे,
तेरा पथ-दर्शक बँध जाता है
तेरे ही बन्धन में।

पग-पग पर विस्मित कौतुक के
दृश्य देखने रुकती है,
कंकड़-पत्थर से भी, भोली,
झोली भरने झुकती है।

मधुऋतु का संदेश गंधवह
जब चुपके से लाता है,
एक नया जग तेरे पथ पर
पागल पलक बिछाता है।

जादूगरनी

विश्व-विपिन की कोमल कलिके,
स्वर्ण-स्वप्न-सी जब तू फूट,
चिर-दिन को उर में भर रखती
अपना रस-भण्डार अटूट,

तेरा भोलापन बन जाता
जग के अलियों को आह्वान।
तेरे द्वार भिखारी बनने
उड़ते अगणित आकुल प्राण।

आँखें खुलने को करती हैं
जब मधुकर आते पास,
अपने ही उर के धन का कब
मिलता है तुझको आभास!

जब मधुपों की टोली मिलकर
तुझको गीत सुनाती है,
तब तू आँखें खोल देखने में
भी क्यों शर्माती है?

जब तू बनती है, नाद

जब तू खिलती सुमन-समान,
जब उर का सौन्दर्य्य छिपाकर
रखना हो जाता है भार,
मानस की प्रत्येक लहर में
तब अभिव्यक्ति उठाती ज्वार।

जब यौवन की मृदुल गुदगुदी
पुलकित कर देती है प्राण
नहीं समाता हास हृदय में,
पलकें खुल पड़तीं अनजान।

जादूगरनी

मलय-पवन-सा यश त्रिभुवन को
जा संदेश सुनाता है।
छवि का सौरभ उड़ा-उड़ाकर
जग को मधुर बनाता है।

रसिक मधुप आकर गाते हैं,
उर की प्यास जताते हैं।
मूक इशारा कर देती है
छक-छककर पी जाते है।

जब सुवर्ण-घड़ियाँ अक्षय मधु
के प्याले देती है ढाल,
चिर-दिन की अतृप्त अभिलाषा
हो जाती तत्काल निहाल।

नन्दन-वन की कली, अवनि-उपवन में
खिलती बिना विचार।
जग मतवाला हो जाता है
जब लुटता तेरा भण्डार।

भूत-भविष्यत् मुँद जाते हैं,
वर्तमान खुल जाता है।
तुझ प्रत्यक्ष सत्य पर जग का,
यौवन हृदय लुटाता है।

जीवन-मरण सभी मिट जाते,
'प्यास' अमर हो जाती है।
देती है—देती रहती है,
देने में सुख पाती है।

वाले, जिनको पिला रही है
युग-युग से मधु के प्याले,
प्यासे के प्यासे हैं पागल
पल-पल पर पीने वाले।

एक बूँद ही कर देती है
पल में मानस मतवाला,
फिर भी अधरों से न छूटता
जीवन भर मद का प्याला।

जब तू खिलती सुमन-समान!

जब तू पल भर होती म्लान,
जग-उपवन सूना-सा लगता,
निशि-दिन की घड़ियाँ काली,
ओस-बिन्दु-से, अश्रु-कणों से
भर जाती डाली-डाली !

जब खाली प्याली-सी डाली-
पर झुक जाती है, आली,
कितने हृदय टूट जाते हैं,
रो पड़ता है वनमाली।

पीड़ा की बेहोशी में लय
हो जाते 'गुन-गुन'-गाने ।
चारों ओर व्यथा चिपटा कर
सो जाते अलि-अलसाने ।

वह सौरभ, मद, प्यार, तरंगें,
वह सुख-यौवन की लाली,
सब कुछ काला-सा हो जाता,
हो जाती दुनिया काली ।

दुर्दिन का लपटों से तेरी
पंखुड़ियाँ कुम्हलाती हैं ।
पीछे वे लपटें मन-ही-मन
पछताती—शर्माती हैं ।

जब जग की मादकता, शोभा,
छवि, मानो मुरझाती है,
शिथिल अधर संध्या-से रजके
चुम्बन-हेतु झुकाती है ।
जब तू पल भर होती म्लान !

जब तू बनती स्वर्ण-विहान,
अगणित हृदय प्रफुल्लित होते
वन के सुमनों-से अनजान,
जादूगरनी, परिवर्तन का
पढ़ती है जब मंत्र-महान।

तू विधवा-वेदना-सरीखी
तम का अगम गहन विस्तार
पल में मिटा, कनक-किरणों से
करती है जग का शृङ्गार।

गगन-अवनि अनुरञ्जित होते,
पुलकित होते पल में प्राण।
विहगों-से जग के भोले उर
गा उठते तेरा छवि-गान।

तम का सघन आवरण तेरी
उज्ज्वलता कर देती दूर।
बनता है अनुराग उषा का
तेरे मस्तक का सिन्दूर।

आँखों में भर कर भावुकता,
श्रद्धा, भक्ति, प्रेम के फूल
जगत् आरती करता तेरी
अयि पावनि, अयि मंगल-मूल!

तू अनन्त के पथ पर चलती,
लेती पल भर जहाँ विराम,
कितना उज्ज्वल, कितना मंगल
हो जाता वह जग अभिराम!

जादूगरनी

कामिनि, कोमल कनक-करों से
करती नव-चेतन-संचार ।
भर-भर प्रेमाञ्जलि चरणों पर
मुदित चढ़ाता है संसार ।

तेरा इंगित विश्व-राग का
ठाट बदल देता सारा ।
तेरी एक उमंग बहाती
मरु मे नवजीवन-धारा ।

एक हास में, एक पुलक में,
एक अमृतमय चितवन में,
एक नया जग रच देती है
मूर्छित वसुधा पर क्षण में ।

पलक-पँखुड़ियाँ खोल भारती
वीणा-वादन-रत साह्लाद
तुझे प्रभाती के स्वर में
देती है पहला आशीर्वाद ।
जब तू बनती स्वर्ण-विहान ।

जब बनती अबला अनजान,
कर-स्पर्श से छुई-मुई-सी
तू, सुन्दरि, सकुचाती है।
मलय-पवन से पद्म-पत्र के
जल-कण-सी हिल जाती है।

कोमल कुसुमो की पंखुड़ियाँ
भी तेरे छिद जाती हैं।
ऊषा की कोमल किरणें भी
तेरा हृदय जलाती हैं।

जब संसार प्यार के जग से
कर देता है तुझको पार,
यौवन की उद्दाम उमंगें
बनतीं तेरे उर का भार।

तुहिन-कणों-से आँखों में तू
अश्रु सजाये रहती है।
करुणा की वर्षा-सी होती
जब कुछ मुख से कहती है।

इन्द्र-धनुष के रंगों से भी,
चाले, विस्मित होती है।
स्वप्नों पर विश्वास जमाकर
तू मन-ही-मन रोती है।

अपने-आप विविध संदेहों का
तू जाल बिछाती है।
शान्ति, सौख्य, आनन्द हृदय का
अपने आप गँवाती है।

एक क़दम चलने को भी जग का
मुँह तकती रहती है।
जिधर बहा ले जाए दुनिया
उसी ओर तू बहती है।

दीन भिखारिन-सी, ऐ रानी,
चरणों पर झुक जाती है।
तुझमें ही घिर कर प्राणोंकी
ज्वाला तुझे जलाती है।

गिरे न आशा के कच्चे
धागे से बँधा हुआ जीवन,
इस भय से, रोके रहती है
अपने ही उर की धड़कन।

री सौन्दर्य्य, मधुरिमा, बनती
तू बन्धन, करुणा-धारा,
फिर भी तेरा रूप जगत् को
लगता है कितना प्यारा!

जब बनती अबला अनजान!

जब तू झुकती महिमावान
शुभ्र चाँदनी की छाया में
किसी शिखर से झरती है।
उतर मुखर निर्झर-सी सत्वर
स्वर से त्रिभुवन भरती है।

तुझे विनम्र बनाता है, सखि,
प्राणों के संचय का भार।
निष्ठुर सुन्दरता सीखेगी
तुझसे पाना हृदय उदार।

जब वर्षा के बादल-सी तू
नीचे को झुक आती है,
जगत् नाच उठता मयूर-सा,
भूमि मुग्ध हो जाती है।

तेरे स्नेह-सलिल से सिंचकर
हृदय हरे हो जाते हैं,
कल्मष धुलते, शतदल खिलते,
रस-मानस लहराते हैं।

किरणों-सी तेरी अंगुलियाँ
डाली को छू जाती हैं,
कलियाँ अपने आप चुम्बनों को
मृदु अधर बढ़ाती हैं।

अरी मधुकरी, जिसके कानों में
तू गीत सुनाती है—
हृदय खोल देता वह अपना,
तू उसमें छिप जाती है,

जब तू झुकती महिमावान !

जब परदा करती गुणवान,
चिर-रहस्य-सी, गूढ़ प्रश्न-सी,
चिर-जिज्ञासा-सी अनजान
कितने उत्कण्ठित हृदयों में
कर लेती युग-युग को स्थान।

झीनी-झीनी मधुर बदरिया में
छिपकर मुसकाती है।
लग-चकोर की आँखों को तू
आकुलता बन जाती है।

जब कलिका-सा सारा सौरभ
उर में भर रख लेती है
मधुकर के प्यासे प्राणों को
तू पागल कर देती है ।

जब रहस्य बन जाती, सुन्दरि,
अपना प्यार छिपाती है,
उलझन में कितने प्राणों को।
री पगली, उलझाती है ।

जब तू दीप-शिखा-सी उज्ज्वल
मूक बनी मुसकाती है,
प्राणों को आमंत्रण देकर
कितनी बार जलाती है ।

भीतर रूप-शिखा जलती है,
बाहर जलते रसिक-पतंग ।
वञ्चित और व्यर्थ हैं दोनों,
हा आवरण, हाय, रस-भंग ।

जादूगरनी

अपने आँचल को बादल-सा
अपने पर छा लेती है।
दिखती, और नहीं भी दिखती,
आँखों को दुख देती है।

री रहस्य, जब मूक पहेली
बनकर, तू छिप जाती है,
भाँति-भाँति के अर्थ लगाकर
दुनिया धोखा खाती है।

कौन देखता पट के पीछे
दो प्यासे नीरव लोचन,
एक अनन्त अतृप्त कामना,
एक हृदय, उन्मद यौवन ?

गोपन को अभाव कह जग का
फूला फिरता है अज्ञान,
छिपी-छिपी हँसती तू उसपर,
पर, न व्यक्त होती छविमान

जब परदा करती गुणवान

जब प्यासे रख जाती प्राण,
पहले एक झलक दिखलाकर
पल में पास बुलाती है,
फिर दो दिन को, तू पल-पल पर
प्रिये, पिलाती जाती है।

जब जीवन को छोड़, तुझे
दुनिया सर्वस्व बनाती है,
जीवन ले, दे अमर व्यथा,
तू अम्बर में छिप जाती है।

तेरी निष्ठुरता के फल बन,
छलना का लेकर आधार,
विरह, अतृप्ति, विकलता, आँसू
जग में उतरे पहली बार।

लाख-लाख आँखों से तुझको
हृदय देखता बारम्बार।
किन्तु,सदा अनजान,अपरिचित,
नूतन-सी दिखती सुकुमार।

शत-शत बार, चञ्चले, तुझको
लाता है उर अपने पास,
'दूर-दूर'-सी किन्तु सदा ही
लगती है—करती उपहास।

मिलन-विरह दोनों ही पल-पल
नूतन प्यास जगाते हैं।
होकर भी बेहोश 'और' की
रट ये प्राण लगाते हैं।

पीते-पीते थक जाते, फिर भी
प्यासे रह जाते हैं;
आँखों को, उर को, अधरों को
चतुर बहुत समझाते हैं।

दीवाने हो जाने पर भी
'प्रेम-प्रेम' ही गाते हैं।
मरने के पीछे भी तेरी
याद साथ ले जाते हैं।

युग-युग तक पीते है तेरे
करों प्रेम के मद-प्याले,
पर अतृप्ति की आग हृदय को
सदा जलाती है, बाले !

केवल प्यास जगा कर उर में,
अरी उर्वशी, उड़ जाती।
उच्छ्वासों से दुनिया उर का
तुझे सँदेशा पहुँचाती
जब प्यासे रख जाती प्राण !

सुमुखि, जाल जब देती तान,
अपने लहराते वालों में
कितने उर उलझाती है।
कितने हृदयों को कल्पों तक
बन्दी बना बिठाती है।

भोले-भाले विहगों-से उर
बन्धन में सुख पाते हैं।
तेरे दो दानों पर अपना
सब कुछ भेंट चढ़ाते हैं।

लेकर आकर्षण, सुन्दरता,
अंग-भंगि, चितवन, मुसकान,
लाज, मान, गोपन के धागे
रचती तू छवि-जाल महान !

तेरे स्नेह-तन्तु वसुधा के
कण-कणपर छा जाते हैं,
माया, मोह, और ममता के
जग को अमर बनाते हैं।

स्वर्ग, नरक सब छिप जाते हैं,
केवल तू ही दिखती है।
मादक आँखों की लाली से
सबकी क़िस्मत लिखती है।

आत्म-समर्पण कर देते हैं,
पिंजरे में बस जाते हैं।
प्रेम-पाश में, वन की स्मृति की
स्वयं समाधि सजाते हैं।

जन्म-जन्म तक तेरा बन्धन
नहीं तोड़ने पाते हैं,
कभी मुक्त हो भी जाते, तो,
फिर फँसने को आते हैं।

अम्बर, अवनी, दशों दिशाओं में
तू जाल बिछाती है।
ऐसा कौन हृदय है जिसको
तू न फँसाने पाती है।

विश्व, विहग-सा, तेरे आँचल की
सोता है छाया में।
सचराचर सबको ढक लेती
अपनी विस्तृत माया में।

तेरा आँचल सबके ऊपर
जब अम्बर-सा छाता है।
तारों-सा उर झाँक-झाँककर
फिर भीतर छिप जाता है।

सुमुखि, जाल जब देती तन।

जब तू बनती माया, प्राण,
तन्द्रा-सी छा जाती जग पर
घनी घटा-सी घिरती है ।
सपनों में आँखों के भीतर
केवल तू ही फिरती है ।

जब तू मद का प्याला बनकर
आँखों को तरसाती है,
विश्व दौड़ता है पीछे, तू
छाया-सी छिप जाती है ।

जग सपनो की आँख-मिचौनी में
जीवन उलझाता है ।
एक तमाशा-सा अपनी ही
आँखों में बन जाता है ।

आँखों पर परदा पड़ता,
तू उस पर चित्र बनाती है।
तरह-तरह के रंग-बिरंगे
मादक रूप दिखाती है।

अजर-अमर अनुराग हृदय मे
भर देती तेरी छाया ।
जीवन में चादर-सी तनती है
जब तू बनकर माया ।

जब विराग कहता है उर से
'है नश्वर सारा संसार'
तब जग में तेरी छवि भरती
सुधा, स्वर्ग-सुख, रस-भंडार !

एक मनोरञ्जन था विधि का
जिसने दिया तुझे विस्तार,
अपने जाले में, मकड़ी-सा,
पर, फँस गया स्वयं कर्तार।

निराकार, निर्लेप, ब्रह्म को
करती तू आकृतिवाला।
सूने नभ का हृदय सजाती
पहना इन्द्रधनुष-माला।

आदि-पुरुष को बाँध प्रेम मे,
आदि-प्रकृति, तेरे भ्रू-भंग
एक ताल पर नचा रहे हैं
कब से अस्थिर जग के संग।

शिल्पी का सौंदर्य्य-बोध-सुख,
कवि का रस-अनुभव-आनन्द
पाता है तेरी सीमा मे
'आकृति', बन्धन में 'यति'-'छंद'
जब तू माया बनती, प्राण!
[

जब कर मान तानती बाण,
पल भर को भी इन्द्रधनुष-सी
भ्रू-कमान चढ़ जाती है,
जग–उर पर अदृश्य आशंका
की छाया–सी छाती है ।

कौन जान सकता नयनों के
घन का छिपा हुआ भण्डार
वज्र गिरावेगा या शीतल
विमल बहावेगा जल–धार ।

प्रकटित करते बाण मान के
कहीं वेदना, प्यास, पुकार,
कहीं बहाते मद का निर्झर,
कहीं अमृत की निर्मल धार !

मानिनि, सजल लोचनो से तू
करती विद्युत्—शर—सन्धान,
विकल-वेदना से बिध जाते
दशो दिशाओ के उर, प्राण !

बिजली-सी मानस पर गिरती
पीड़ा बन बस जाती है,
युग-युग तक कसका करती है,
पल-पल पर तड़पाती है।

हृदय खोल कर रख देता है,
बाणों को अपनाता है,
जग तेरी शर-शय्या पर सो
'इच्छा-मरण' मनाता है।

भग्न हृदय के टुकड़ों का ही
मादक हार बनाता है ।
उन कसकों के करुण दिनों में!
भी तुमको पहनाता है ।

उरके घावों की लाली से
जगत् लाल हो जाता है।
तेरे वाणों को अपनाकर
अपने प्राण लुटाता है।

एक वार जो मर जाता है,
वही अमर हो जाता है,
तेरे जग में वही चतुर है
जो पागल कहलाता है।

लगता स्मृति-सा, शशि-सा सुन्दर
हृदय घाव सब को प्यारा ।
उसे निरखते ही मृदु निशियाँ
जाग विताता जग सारा ।

एक निमिष को भी जब, जग से
रूठ, मौन हो जाती है,
कितने छन्दों, रागों से तब
दुनिया तुझे रिझाती है।

बंकिम भृकुटि, आवरण, गोपन,
मौन, अश्रु, तिरछी चितवन,
लाज, उपेक्षा के शर जग को
मूर्छित कर देते तत्क्षण।

केवल कौतूहल में ही, सखि,
कभी छोड़ देती है बाण,
पंखहीन पक्षी-सा जग का
हृदय तड़प उठता अनजान।

जरा-मृत्यु, यौवन-जीवन, औ'
प्रलय, सृष्टि, अवसान, विहान,
तेरी चितवन पर उठते हैं,
सुख-दुख के कितने तूफ़ान!

जादूगरनी

वेद, शास्त्र, जप-तप, पूजा-विधि,
योग, ज्ञान, विज्ञान महान्,
तेरा मान सभी के सहसा
विचलित कर देता है प्राण!

अखिल जगत् का कल-रव तेरी
फिर-फिर करता है मनुहार!
अगणित काव्य-कुसुम चरणों पर
भेंट चढ़ाता है संसार।

एक निशाने में बिध जाते
रवि-शशि-तारे विहग-समान।
तुझ से हार मान लेना ही
विश्व समझता विजय महान्।

एक बाण में अखिल विश्व का
पौरुष, कीर्ति, राज्य, धन, मान
घायल होकर, हार मान कर,
सुमुखि, माँगता जीवन-दान
जब कर मान तानती बाण!

जब तू बनती है तूफ़ान,
विश्व-रूप-सागर! सुन्दरि, जब
प्रबल हिलोरें लेती है,
कितनी जीवन-नौकाओं को
तू चंचल कर देती है।

पूर्णचन्द्र-सा प्रेम, गगन में चमक,
उठाता उर में ज्वार,
तब अभिलाषाओं की लहरें
करती कितना हाहाकार।

जादूगरनी

अयि छवि-सिन्धु ! तरंगें तेरी
करती हैं जग को आह्वान,
मानों देती हो युग-युग के
सञ्चित रत्नों का तू दान।

छद्म-वेशिनी, नक्षत्रों की
छाया से करती शृङ्गार !
किन्तु, छिपाये रहती उरके
अनुपम रत्नों का भण्डार !

तेरे उर का कूल खोजने
जग का कितना कौशल, ज्ञान
असफल यात्राएँ कर हारा
रही सदा तू अगम, अजान।

यह अभेद्य गहराई उर की!
प्रबल तरंगें, यह विस्तार!
चिर-जिज्ञासा के लोचन भी
पा न सके हैं तेरा पार।

कितने पोत भंग कर देती
तेरी केवल एक तरंग।
आशाओ के भवन टूट कर
बह आते बालू-से संग।

अन्धकार–से, लहरो–से जब
बालों को लहराती है
राह भूल, अन्धी हो दुनिया,
उलझन में फँस जाती है।

फैल रहा है पार क्षितिज के
भी तेरा अनन्त विस्तार,
दुनिया एक द्वीप–सी दिखती
तुझ में, अयि छवि-पारावार।

अपनी इच्छा से तू पल में
शत–शत विश्व बनाती है,
अपनी ही लहरों में उनको,
पल में बहा, मिटाती है।

तुझे हृदय में विश्व बाँधकर
रखने की करता है चाह,
पर, तेरी अनन्त लहरों की
कौन रोक सकता है राह।

नहीं जानती है तू बन्धन,
चिर–चंचल, चपला, गतिमान!
नाश–सृष्टि के विविध स्वरों में
नित्य नये गाती है गान।

तेरी तरल तरंगें बढ़कर
बालू के कण से संसार
बहा, गोद में बिठा, चुम्बनों से
करती हैं उनको प्यार!

आशाओं के मेरु एक पल में
तू तोड़ गिराती है।
अपने एक हृदय–कम्पन से
जग में प्रलय मचाती है।
जब तू बनती है तूफ़ान!

जब ताण्डव करती अम्लान,
तेरी ताल–ताल पर तारे
टूट–टूट कर गिरते हैं।
तेरी आँखों के इंगित पर
रवि-शशि के रथ फिरते है।

समय चपल गति, दिनकर ज्वाला,
तड़ित् चमक, घन गर्जन घोर,
भू-भूकप, चढ़ाता तेरे
पद-पद्मो पर सिधु हिलोर।

महा-प्रलय का डमरू, सुन्दरि,
हो उन्मत्त बजाती है,
विधि का मस्तक झुक जाता है
तू उसको ठुकराती है।

मृत्यु चमकती है चितवन में,
नूपुर-ध्वनि में बजता नाश,
कँप उठता है विश्व देखकर
तेरा बंकिम भृकुटि-विलास।

लोचन-प्यालों में विष भरकर
जिसे कराती है तू पान,
उसकी आँखों के आगे से
नभ–भू होते अन्तर्धान !

तेरे चरण–नूपुरों में, सखि,
मृत्यु-सुन्दरी गाती है,
'सर्वनाश' का राग छेड़ तू,
तन्मय हो, मुसकाती है।

जादूगरनी

तेरी वह मुसकान शान्ति के
उर में आग लगाती है।
दशो दिशाएँ तेरी तिरछी
चितवन से बिंध जाती हैं।

अंग-भंगि को निरख, विकल हो,
भूधर भी हिल जाते हैं।
तेरे चरणों पर अमरों के
स्वामी प्राण चढ़ाते हैं।

अन्धकार-सा अपना अञ्चल
अवनी पर फैलाती है।
काले केशों को नागिन-से
नभ में मुक्त उड़ाती है।

जिसे हवा भी छू जाती है
हो जाता बेहोश अजान।
तेरा विष भी बड़े प्यार से
करता है स्वीकार जहान।

जब विनाश का नेत्र तीसरा—
खुलता, जल जाता संसार।
प्रलय, सृष्टि, दोनों पर तेरा,
मायामयि, समान अधिकार

कितनी सुन्दर लगती है, सखि,
जब तू आग लगाती है।
सारे जग की राख निरख कर
धीरे से हँस जाती है।

जब विनाश का नशा उतरता,
तू मन में पछताती है,
एक-बूँद आँसू से दुनिया को
तू पुनः जिलाती है।

किसी रूप में आवे, सजनी,
दुनिया अर्घ्य चढ़ाती है।
तेरी छवि सबके प्राणों पर
जय पाकर मुसकाती है।

जब ताण्डव करती अम्लान!

जब प्रकाश करती द्युतिमान !
भुवन चतुर्दश जलजातों-से
पुलकित हो मुसकाते हैं ।
अखिल विश्व के विहग सजग हो
तेरा गौरव गाते हैं ।

अन्धकार उज्ज्वल हो जाता
नभ में तनता स्वर्ण-वितान ।
हो जाती हैं निशियाँ पावन,
सन्ध्या शीतल, विमल विहान ।

जब मन-मानस में करती है,
पावनि, पावन प्रेम-प्रकाश,
हृदय-कुञ्ज खिल उठता सहसा,
गुञ्जित होता है उल्लास ।

निशि में शशि, दिन में दिनकर बन
करती है आलोक अनूप ।
त्रिभुवन को अनुरञ्जित करता
ज्योतिर्मयि, तेरा शुभ रूप ।

जीवन की अँधियारी निशि में
कभी चमकती चन्द्र-समान ।
लख तेरी मुसकान हृदय में
उठने लगता है तूफ़ान ।

जब तू शरद्-चन्द्र-सी नीले
नभ में चढ़ मुसकाती है,
जरा-जीर्ण जग के प्राणों में
यौवन-ज्वार उठाती है ।

शीतल उज्ज्वल कर-स्पर्श से
जिसे ज़रा छू जाती है,
पाप, ताप कर शान्त, उसी को
पल में अमर बनाती है।

जग-चकोर के तव वियोग में
अंगारे चुगते हैं प्राण।
विस्मय-सी हो उदित उसे तू
देती है नव-जीवन-दान।

जब बेहोश हृदय पर, सुन्दरि,
सुधा-धार बरसाती है,
युग-युग के प्यासे प्राणों को
शीतल करने आती है।

मरे हुए भी जी उठते हैं,
होता नव-चेतन-संचार,
अरी प्राणदे, तुझे निरखकर
होता है निहाल संसार।

स्वप्नों को उज्ज्वल करती है,
दुख को मधुर बनाती है।
तेरी छवि की ज्योति निराशा मे
आशा बन जाती है।

तारो-तारो में जग-मग है
तेरा ही उज्ज्वल आलोक।
तेरे ही प्रकाश मे अपना
लक्ष्य खोजते तीनों लोक।

कभी अँधेरी कुटिया मे तू
दीपक-सी जलती, सुकुमार,
कितने ही पतंग तेरी उस
छवि पर होते हैं बलिहार।

भव-सागर में जीवन-तरणी
राह नहीं जब पाती है,
बन प्रकाश का स्तम्भ, उसे तब
तू ही राह दिखाती है,
जब प्रकाश करती द्युतिमान।

जब तू देती है वरदान,
तेरी मूर्ति हृदय-मन्दिर में
स्थापित करता है संसार।
अश्रु-कणों का अर्घ्य चढ़ाता
तेरे चरणों पर अविकार

पीड़ा का दीपक जलता है,
उर में होता परम प्रकाश
तेरी छवि के मद-सौरभ से
भर जाते अवनी-आकाश

देवि, युगों के तप के पीछे
तेरे दर्शन पाते हैं।
तेरे चरणों पर जीवन के
सब अरमान चढ़ाते हैं।

जब तू कहती 'माँग', हृदय की
वाणी हो जाती है मौन।
तेरा वह आलोक निरख कर
सुधि में रह सकता है कौन ?

सूने मे मुखरित होकर सब
गाते तेरी छवि का गान,
तेरे सम्मुख भक्ति-भाव से
मूक खड़े रहते अनजान।

तेरे रस से भरने ख़ाली—
प्याली दुनिया लाती है,
पर तेरे आगे करने में
अभिलाषा सकुचाती है।

जादूगरनी

अन्तर्यामिनि, नीरव नयनों की
तू पढ़ लेती है बात!
जाने कब भर जाती प्याली,
नही किसी को होता ज्ञात।

झोली टाँग द्वार पर तेरे
युगो हृदय देता फेरी,
जाने क्यो पीछे रह जाता
जब निधियाँ लुटती तेरी।

जो उर की अभिलाषाओ को
कहते-कहते रुक जाता,
उसकी झोली में जाने कब
चिर-वाञ्छित धन भर जाता।

तेरी एक झलक पाकर ही
भिक्षुक उर फिर आता है।
तू कहती है 'मांग', किन्तु
वह कहाँ माँगने पाता है।

जादूगरनी

तेरी छवि की एक किरण से
जल उठती जीवन-ज्वाला
तेरी स्मृति से अन्तस्तल में
हो जाता है उजियाला।

आँसू मुक्ता-कण बन जाते
जलन हृदय-धन बनती है।
स्वर्ण-वितान मनोहर बनकर
व्यथा चतुर्दिक् तनती है।

वीणा-वीणा में भर जाते
अनजाने ही छवि-गाने!
गूँगे भी गायक बन जाते
और चतुर-जन दीवाने

इन्द्र-धनुष के विविध रँगो से
दिसा-दिशा रँग जाती है,
वसुधा हरी-भरी होती
जब अमृत-धार बरसाती है।

जादूगरनी

जादूगरनी, जादू का कण
जिसकी झोली में भरती,
बेहोशी उसकी सुधि बनती
जीवन को मादक करती।

सुख-दुख की परिभाषाओं का
कैसा अर्थ लगाती है?
जिसको दुख कहती है दुनिया,
तू आनन्द बनाती है।

बन जाती रंगीन कल्पना,
स्वप्न मधुर करती, बाले!
युग-युग के प्यासे लोचन भी
पल में होते मतवाले।

तेरा ही वरदान व्यथा को,
सुन्दरि, सुन्दर करता है।
मृत्यु अमरता बन जाती है,
पीड़ा में रस भरता है।

तेरा ही वरदान प्राप्त कर
कला अमर हो जाती है।
तेरी आँखो के इङ्गित पर
मुग्ध भारती गाती है।

चित्रकार की रेखाओ में
तू ही चित्र बनाती है।
कवियों के करुणा-निर्झर में
तू ही अश्रु बहाती है।

कुसुमों के सौरभ में मिलकर
त्रिभुवन में बस जाती है,
तेरी छवि मधुपों के स्वर में
मधुर प्रभाती गाती है।

विश्व-रूप-उपवन की मधुऋतु,
जब 'मलया' बन आती है,
तू ही खोल पँखुड़ियों के पट
कलियाँ नवल खिलाती है,
जब तू देती है वरदान!

जब तू करती है कल्याण,
तू उदार बन कर भर देती
भुवन-भुवन में स्वस्ति-सुवास
तेरे सरल स्नेह-कण निर्मल
कर देते अवनी–आकाश।

तरल त्रिपथगा की धारा–सी
पावन करती तीनों लोक।
मरे हुए भी जी जाते हैं,
दुखी भूल जाते है शोक।

जिस पथ से बहती है, पावनि,
भूमि तृप्त हो जाती है,
दुनिया तेरे तीर न जाने
कितने तीर्थ बसाती है।

ज्ञान, ध्यान, पूजा, सेवा, व्रत,
भूल साधना, जप, तप, दान,
तेरे पावन सरल स्नेह में
एक बार जो करता स्नान,

उसके मन की सकल कालिमा
पल भर में धुल जाती है,
एक अमर आभा पलकों में
जगमग ज्योति जगाती है।

अशिव अशुभ स्वप्नों की छाया
जब जग पर छा जाती है,
उसे जगाने को तेरी गति
मधुर प्रभाती गाती है।

अभिलाषा के दीपक दुनिया
तुझमें जला बहाती है,
तू सबको आश्रय देती है,
सबको पार लगाती है !

मंगलमयि, तेरे इंगित पर
चलता है जब जग अनजान,
अनायास ही मिल जाता है
उसको चिर-दुर्लभ निर्वाण ।

पाप-ताप हरती पृथ्वी के,
जीवन शान्त बनाती है ।
अपने आँचल में दुनिया के
अश्रु पोंछ ले जाती है ।

अमृत-धार कर पान, अमर हो,
तेरा गौरव गाते है ।
तेरे तट पर जो आते हैं,
वे पावन हो जाते हैं ।

जादूगरनी

जगज्जननि, तू हाथ पकड़कर
जग को मार्ग दिखाती है।
प्रेम-लोक के स्वर्ण-सदन के
आसन पर बैठाती है।

अखिल जगत् को जीवन देती,
सबका पालन करती है।
वसुधा की रीती झोली में
ऋद्धि-सिद्धि तू भरती है।

अन्धकार से दशो दिशाएँ
ढक जातीं, डर जाते प्राण,
स्नेहमयी, तब लगा हृदय से
गाती तू आश्वासन-गान।

वज्र टूटता जब मस्तक पर,
मचने लगता हा-हा-कार,
तू आगे बढ़, झेल आपदा,
जननि, रोक लेती संहार।

हृदय-हिंडोले में हँस-हँस कर
तू जग-बाल झुलाती है।
तेरी वत्सल गोदी में सो
मानवता सुख पाती है।

घोर घटा जब घिरती नभ में,
काला हो जाता संसार,
आशा का दीपक बुझ जाता,
महा-प्रलय का उठता ज्वार,

जब घनघोर गर्जना से
भयभीत विश्व घबड़ाता है,
निपट निराशा की घड़ियो में
जब साहस सकुचाता है।

तू छाती से चिपका लेती,
भय-सन्देह मिटाती है।
तेरे अञ्चल की छाया से
प्रलय शान्त हो जाती है
जब तू करती है कल्याण।

जब लेती पतवार, सुजान,
जीवन-तरी जीर्ण जग की जो
शत-शत चक्कर खाती है,
कर्णधार बन उसे भँवर से
पल में पार लगाती है।

प्रलय-कल्पना से कम्पित हो
जब पलकें मुँद जाती हैं,
संकट के घन-गर्जन से
शिशु-सी दुनिया घबराती है।

लक्ष्य ओट होता आँखों की,
साहस साथ न देता है,
तब जग शक्तिमयी तेरा ही
सहज सहारा लेता है।

जब तूफ़ानों के झोंकों से
तरणी डूबी जाती है,
तब तू मूक इशारे से ही
उर को धैर्य्य बँधाती है।

जब पतवार पकड़ती है तू
वश में होता पारावार,
युग-युग के भटके प्राणी भी
सहज पहुँच जाते हैं पार।

जब विपरीत लहर उठती है,
महाकाल की छिड़ती तान,
अन्धकार के काले अञ्चल में
होती आशा अवसान,

उस उन्मत्त निराश घड़ी में भी
छिटकाती तू मुसकान,
'सर्वनाश' को भी, सुन्दरि,
तू कर देती है मधुर महान्।

अबला से सबला बन जाती,
बनती दुखियों की आशा।
आश्वासन देती है तेरी
आँखों की नीरव भाषा।

सहसा शशि-मुख दिख उठता है,
घूँघट—पट हट जाता है।
तेरा अञ्चल, पाल—सदृश, जब
नौका पर लहराता है,

अपने कोमल मृदुल करों से
जब तू डाँड चलाती है,
जान नहीं पाती है दुनिया
महा-प्रलय कब आती है।

जब-जब प्रलय झाँकती है, तू
उस पर परदा करती है।
विपदा की घड़ियों को भी
मादक करती रस भरती है।

कभी मृदुल चितवन ही तेरी
बनती जीवन की पतवार।
कभी मधुर मुसकान, स्नेहमयि,
करती जीवन-नौका पार।

जिधर बहा ले जावे, बाले,
उधर विश्व बह जाता है,
तुझे सौंप कर सारा सुख-दुख
जगत् मुदित मुसकाता है।

तेरा शशि-आनन अन्तर् में
आशा—ज्वार उठाता है।
सुख के स्वर्ण-कूल तक जीवन-
तरणी को पहुँचाता है।

तुझ में डूब, विसुध हो, जग की
सीमा को जो करता पार,
उसे अमर करती तू, खुलता
उसके लिए मुक्ति का द्वार।

पार लगावे या न लगावे,
मृत्यु मधुर कर देती है।
अन्तिम घड़ियों में मुसकाकर
कितना रस भर देती है।

सजनि, पिलाती जाती है तू
यात्रा-पथ में मद-प्याले,
बेहोशी में देख न पाते
महामृत्यु को मतवाले।

जो पतवार तुझे दे देते,
उनको जीवन-मरण समान,
आत्म-समर्पण करके तुझको
निर्भय हो जाते हैं प्राण,
जब लेती पतवार, सुजान।

जब तू बनती, सजनि, महान्,
अम्बर के भी ऊपर अम्बर-सी,
सुन्दरि, छा जाती है।
तारों-से कितने जग झोली में
भर कर चमकाती है।

गूँथ अमित ब्रह्माण्डों को तू,
हार बना, करती शृङ्गार।
तेरे एक भृकुटि-कम्पन में
मिटते-बनते हैं संसार।

तेरे आकर्षण से ही घूमा
करते हैं रवि-शशि अविराम।
करती रहती उन्हें प्रकाशित,
ज्योतिर्मयि, तू ही अभिराम।

अपनी माया तू अनन्त के
ऊपर भी फैलाती है।
निर्गुण के गुण-कर्मों की
सीमा-रेखा बन जाती है।

विधना अपनी ही रचना का
बन्दी-सा बन जाता है।
तुझे बना, तेरे चरणों पर
अपना शीश झुकाता है।

जिसने जन्म दिया है तुझको,
बन जाता वह तेरा बाल,
स्नेहमयी, तेरी गोदी में
सोकर होता ईश निहाल।

तेरे उर का अमृत पान कर
अपनी प्यास बुझाता है।
तू अनन्त बन जाती है, माँ,
वह बालक बन जाता है।

महाशक्ति, तूने छाती से
लगा रखे हैं कितने लोक।
हरती है, फैलाकर स्नेहल-
अञ्चल, लोक-लोक का शोक।

अपने हृदय-हिंडोले में तू
कितने जगत् झुलाती है,
सुख की निद्रा लेते हैं सब,
जब तू लोरी गाती है।

रवि-शशि हैं आलोकित आँखें,
यह विराट् अम्बर है वस्त्र,
है शृङ्गार-सुमन ये तारे,
बिजली महाशक्ति का अस्त्र।

स्वर्ण लुटाती, दशों दिशाओं में
मद भरती आती है।
तेरी झाँकी पाकर दुनिया
अपना दुःख भुलाती है।

जब तू मुसकाती, नभ-भू में
हो जाता है उजियाला।
जब तू स्नेह-सुधा बरसाती,
भर जाता जग का प्याला।

विविध संकटों में फँस दुनिया
करती है जब तेरी याद,
तेरा वरद हाथ तब बढ़कर
देता सबको आशीर्वाद।

कण-कण में तेरी सत्ता है,
उर-उर में है तेरा वास।
भुवन-भुवन के उपवन में तू
बसी हुई बन सुमन-सुवास।

जादूगरनी

अपने अञ्चल की छाया से
ढक लेती सारा संसार
किसमें इतनी शक्ति, नाप ले
जो तेरा विराट् विस्तार

एक इशारा प्रलय बुलाता,
एक इशारा सृष्टि अजान।
तेरी ओर विहग-से उड़ते
लोक-लोक के पागल प्राण।

अपनी माया के पंखों पर
सारा विश्व उड़ाती है,
कह सकता है कौन, किसे, कब
किस जग में ले जाती है?

अजर-अमर भी तुझे पूजते,
उर-उपहार चढ़ाते हैं।
नक्षत्रों के हार गूँथ कर
वे तुमको पहनाते हैं।
जब तू बनती, सजनि, महान्।

जब तू होती अन्तर्धान,
यह समृद्ध वसुधा प्राणों को
लगती है सुनसान श्मशान।
दशों दिशाओं का सुहाग
लुट जाता जब करती प्रस्थान।

तेरा पलभर का पर्दा भी
जग में प्रलय मचाता है।
कितने कोमल हृदयों पर वह
वज्रपात बन जाता है।

जादूगरनी

अखिल विश्व की वीणाओं में
बज उठता है विकल वियोग।
सकल सृष्टि का अवलम्बन है,
शक्तिमयी, तेरा संयोग।

तारों से ये प्राण झाँककर
तुझे खोजते हैं छविमान,
पर तेरे अभाव में
संध्या-सुमनों-से हो जाते म्लान।

अखिल जगत् की आँखें खुलकर
अपलक तारों-सी सब रात
विकल प्रतीक्षा करतीं तेरी,
अरी चंचले, री अज्ञात।

री शशि-हासिनि, जब अपना मुख
छिपा, चली जाती उस पार,
हो जाता है नष्ट कुमुद-सा
मुरझाकर सारा संसार।

डालों-डालों पर मोती-से
आँसू बिछ जाते सब ओर,
अंगारे चुगती है दुनिया,
हो जाते बेहोश चकोर।

शशि-विहीन निशि-सा जग-आँगन
हो जाता है शोभाहीन।
तमसावृत अवनी विधवा-सी
लग उठती है दीन-मलीन।

अयि मधुऋतु की साँस, खिलाती है
तू जग-उपवन के फूल।
जब तू छिपती है वन-उपवन
विकसित होना जाते भूल।

महाशून्य के सूने स्वर में
गुञ्जित होता विकल विहाग।
रस के स्रोत सूख जाते हैं,
लग जाती अम्बर में आग।

पतझड़ की सूनी डालों-सा
लगता सकल विकल संसार,
महाशून्य में मिल जाती है
मधुपो की मादक गुञ्जार।

इन्द्र-धनुष से रंग-बिरंगे
अञ्चल का जब छिपता छोर,
महा-प्रलय की उसी समय से
उठने लगती प्रबल हिलोर।

तेरी सत्ता के आश्रित हैं
जग के सारे राग-विराग,
तेरे छिपते ही जीवन की
आशा जग देता है त्याग।

माया, अपने साथ ब्रह्म का
भी तू करवाती सम्मान,
ओझल होते ही विराट् के
व्याकुल कर देती है प्राण।

महाशून्य में बैठ अकेला
'शेष' बहुत पछताता है,
आकुल हो, आह्वान-गान वह
नीरव स्वर में गाता है।

तू ही है आनन्द ईश का,
तू ही है उसका अनुराग,
तू ही उसकी शोभा, सम्बल,
शक्ति, सृष्टि का स्वर्ण-सुहाग।

रह जाता है अवनीतल में
अश्रु-सिन्धु, नभ में उच्छ्वास,
इसी अश्रु-सागर पर करता
एक कल्प तक ब्रह्म निवास।

विश्व-गीत की तान टूटती
जीवन-वीणा होती मौन।
तेरे बिना, श्वास संसृति की,
जीवित रह सकता है कौन?
जब तू होती अन्तर्धान!

री जादूगरनी छविमान,
अपनी इच्छा से तू कितने
रूप बदलती है, वाले !
लखकर दर्शक, चकित, मुग्ध कवि,
हुए मूक गाने वाले ।

एक घड़ी भी स्थिर कब रहता
तेरा मादक रूप अनूप,
चित्रकार अंकित कर सकता है
तेरा किस भाँति स्वरूप ।

लहर घड़ी भर में बन जाती,
एक घड़ी में ही तूफ़ान ।
अभी सरलता और नम्रता,
अभी कठिनता औ' अभिमान ।

पलभर में रहस्य बन कर तू
आकुल कर देती है प्राण,
पलभर पीछे ही बन जाती है
तू भोलापन, अज्ञान ।

क्षण में फूल, शूल क्षण भर में,
पल में पतझड़ या मधुमास,
करुणा, अश्रु, विकलता, पीड़ा,
या आनन्द, मधुरिमा, हास ।

स्वर्ण-विहान कभी बन कर तू
जागृत करती जग के प्राण,
निद्रा-मुक्त प्राण विहगों-से
गाने लगते तेरा गान ।

जादूगरनी

कभी शांत संध्या बन जग को
कर्म-काण्ड से करती दूर,
तेरे अञ्चल की छाया में
हो जातीं चिन्ताएँ चूर।

कभी दिवस का कोलाहल बन
सञ्चालित करती संग्राम,
कभी निशा की मादकता बन
शीतल करती है हृद्धाम।

एक समय में रूप अनेकों
तेरे विश्व निरखता है।
किस जादू से, सुन्दरि, तेरा
पल-पल रूप बदलता है।

आधी दुनिया में अँधियारा,
आधे जग में परम प्रकाश,
आधे जग में सर्वनाश है,
आधे में उल्लास–विलास।

कहीं, सजनि, छाया बन जाती,
कहीं धूप चमकाती है,
अश्रु बहाती किसी जगत् में,
कहीं मधुर मुसकाती है।

किसी हृदय में आग लगाता है
तेरा अनुपम अनुराग।
तेरी तान किसी को भैरव राग,
किसी को करुण विहाग।

कृष्ण-पक्ष की निशि बनकर तू
कभी अँधेरा छाती है!
कभी शरद् की पूनो बनकर
ज्योत्स्ना-जाल बिछाती है।

कभी ग्रीष्म की दोपहरी बन
उर में लपट लगाती है,
कभी घटा-सी घिर कर शीतल
जीवन-धार बहाती है।

जादूगरनी

कभी सुधा का स्रोत, कभी विष,
क्या-क्या रूप दिखाती है !
बुद्धि भूलती सुध अपनी, जब
तुझे समझने आती है ।

बहुरूपिणि, तू भोले उर को
कितनी बार भुलाती है,
कभी पटक देती है पथ पर,
उर में कभी झुलाती है ।

तू रहस्य है, इसीलिए, तो,
लगती है जग को प्यारी,
ऐ अनन्त की कली, जगत् की-
तेरे बिना शून्य क्यारी !

जिसकी जैसी आँखें होतीं,
तू वैसी बन जाती है ।
कभी निशा-सी, कभी उषा-सी,
अम्बर में मुसकाती है ।
री जादूगरनी छविमान !

—आज जब कि राष्ट्र में एक घोर मंथन हो रहा है और नवीन युग के निर्माण की तैयारियाँ हो रही हैं—ऐसे समय अपने महान् राष्ट्र के एक नम्र सेवक बनने के लिए, एक योग्य नागरिक बनने के लिए, हमारा आपसे नम्र अनुरोध है कि आप 'सस्ता-साहित्य-मण्डल' के उत्तम एवं क्रान्तिकारी प्रकाशनों का अध्ययन करें। वे स्वास्थ्यकर होते हैं। उनमें जीवन-निर्माण करने की शक्ति होती है।

मन्त्री